भारतीय संविधान में राष्ट्र (संघ), राज्य और भाषा का अन्तः सम्बन्ध और उससे जुड़ी समस्याएँ

सुमित कुमार (शोधार्थी)
पीएच.डी., हिन्दी अध्ययन केंद्र
गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय, गांधीनगर

सारांश

यहाँ राष्ट्र (संघ), राज्य और भाषा के संवैधानिक संबंधों के साथ-साथ उनसे जुड़ी समस्याओं को समझने की कोशिश की गई। जिसमें विभिन्न विद्वानों के विचारों को व्यक्त किया गया। मुख्यतः राजनीतिक कारणों से भाषा समस्या आज भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है, जो किसी न किसी रूप में एक वर्ग निर्माण कर जनता को बाँटने का काम करती है। चाहे वह हिंदी-अंग्रेजी विवाद हो, हिंदी-उर्दू विवाद जिसमें साम्प्रदायिकता की बू हो या फिर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की आपसी लड़ाई, मुख्यतः दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय भाषाओं में, या क्षेत्रवाद में भाषा का आधार, ये सभी बातें किसी राष्ट्र के निर्माण में समस्या उत्पन्न करती हैं तथा देश की उन्नति में बाधक होती हैं।

बीज शब्द: *भाषा, राष्ट्र, विचार, भाव, संघ*

शोध विस्तार

भारतीय संविधान में कुल 22 भाग, 395 अनुच्छेद, और 12 अनुसूचियाँ हैं। इनमें संघ, राज्य और भाषा संबंधित निर्देश मुख्यतः 7 अलग- अलग भागों में कुछ इस प्रकार दिए गए हैं,

भाग 1- संघ एवं उसके राज्य क्षेत्र	**अनु.1 से 4**
भाग 5 – संघ	**अनु. 52 से 151**
भाग 6 – राज्य	**अनु. 152 से 237**
भाग 8 – संघ राज्य क्षेत्र	**अनु. 239 से 242**
भाग 11 – संघ और राज्यों के बीच सम्बन्ध	**अनु. 245 से 263**
भाग 14 – संघ एवं राज्यों के अधीन सेवाएं	**अनु. 308 से 323**

भाग 17 – राजभाषा **अनु. 343 से 351**

संविधान के अनुसार, "भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ होगा।"[1] जहाँ तक संघ और राज्यों के बीच संबंध की बात है तो वह संविधान के भाग 11 में 'संघ और राज्यों के बीच संबंध' अनुछेद 245 से 263 तक विस्तार से वर्णित है। इसके अंतर्गत मुख्यतः विधायी, प्रशासनिक और वित्तीय शक्तियों का सुस्पष्ट बंटवारा केंद्र (संघ) और राज्यों के बीच किया गया है। भाग 17 में 343 से 351 तक भाषा सम्बन्धी निर्देश दिए गए हैं,

अध्याय 1- संघ की भाषा

" 343. संघ की राजभाषा – (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।"[2]

" 344. राजभाषा के सम्बन्ध में आयोग और संसद की समिति"[3]

अध्याय 2 – प्रादेशिक भाषाएँ

"345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएँ"[4]

"346.एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा "[5]

" 347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी अनुभाग द्वारा बोले जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में विशेष उपबंध"[6]

अध्याय 3 – उच्चतम न्यायालयों और उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

"348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा"[7]

" 349. भाषा से सम्बंधित कुछ विधियाँ अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया"[8]

अध्याय4- विशेष निर्देश

"350. व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा"[9]

"351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश"[10]

वर्ष 2003 में संविधान में हुए 92वां संशोधन के बाद कुल भाषाओं की (संवैधानिक मान्यता प्राप्त) संख्या 22 हो गई है। जो संविधान की आठवीं अनुसूची में इसप्रकार वर्णित है,

1. असमिया, 2. बंगला, 3.बोडो, 4. डोगरी, 5. गुजराती, 6. हिंदी, 7. कन्नड़, 8. कश्मीरी, 9. कोंकणी , 10. मैथिली, 11. मलयालम, 12. मणिपुरी, 13. मराठी, 14.नेपाली, 15.उड़िया,16.पंजाबी, 17. संस्कृत,18.संथाली,19. सिंधी, 20.तमिल, 21.तेलुगु, 22. उर्दू।

इसके आलावा भाषा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निर्देश अनुच्छेद 120 (भाग-5) तथा अनु. 210 (भाग-6) में भी दी गए हैं,

"120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा- (1) भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा:

परंतु, यथास्थिति राज्यसभा का सभापति या लोकसभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी प्रयाप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध ना करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ के 15 वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानों " या अंग्रेजी में " शब्दों को उसमें से लोप कर दिया गया हो।"[11]

"210 विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा – (1) भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा :

परंतु यथास्थिति, विधानसभा का अध्यक्ष या विधान परिषद का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी प्रयाप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

(2) जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से 15 वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो

1[परंतु 2[हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्य के विधान-मंडलों] के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानों इसमें आने वाले " पन्द्रह वर्ष " शब्दों के स्थान पर "पच्चीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों :

3 [परंतु यह और कि 4_5 अरुणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पन्द्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "चालीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों।]"[12]

उपर्युक्त व्याख्या में राष्ट्र (संघ), राज्य और भाषा के अन्तः सम्बन्धों की संवैधानिक स्थिति को हमने देखा। और साथ ही अब उनसे जुड़ी हुई समस्याओं को जानने की कोशिश की जाएगी।

भाषा, यूँ तो अभिव्यक्ति का एक माध्यम समझा जाता है, परंतु सिर्फ इतना कहने से इसके आंतरिक निहितार्थ को पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता है, अतः इसके अर्थ विस्तार पर भी दृष्टि डालना जरूरी है। भाषा के सैद्धांतिक पक्ष की गहराई में न जाते हुए यदि हम सिर्फ व्यावहारिक पक्ष को भी देखें तो हम पाएँगे कि भाषा संप्रेषण द्वारा किसी संदेश (या भाव) को एक से अन्य तक पहुँचाया जाता है। जब हम यहाँ भाषा की चर्चा कर रहे हैं, तो उससे हमारा तात्पर्य वैसी भाषा जिसकी प्राथमिक इकाई ध्वनि होती है। इस ध्वनि को हम एक खास संकेत भी कह सकते हैं, जिसका काल क्रमानुसार किसी समाज या समूह में विकास होता है तथा इस बीच वह अर्थग्रहण की लंबी प्रक्रिया से होकर गुजरता है और फिर ध्वनि के आदान-प्रदान में हम पाते हैं कि सभी संकेतों में विशेष भाव छुपे होते हैं जिससे आदान-प्रदान करने वाले दोनों ही पक्ष भाषा अधिगम द्वारा भलीभांति परिचित होते हैं।

उदाहरण के तौर पर यदि कोई 'गाना' कहता है तो उससे किसी खास भाषा यानी हिंदी भाषा जानने वाले लोग आसानी से समझ सकते हैं और उसमें निहित अर्थ जैसे सुर, ताल, लय आदि कई चीज़ें स्वतः ही जुड़ती चली जाती है और आगे विस्तार में कोई समाज, संस्कृति, उसकी मान्यताएँ आदि अनेकों चीजें समाहित हो जाती हैं। यहाँ एक और महत्त्वपूर्ण बात का ज़िक्र करना जरूरी है कि किसी भाषा को जब लिखित रूप दिया जाता है तो उसे लिपि की संज्ञा दी जाती है, उदाहरणार्थ हिंदी की लिपि देवनागिरी है और अंग्रेजी की रोमन। जैसे कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि किसी भी भाषा का निर्माण काल क्रमानुसार होता है और ज़ाहिर तौर पर उसका एक विशेष समाज, वर्ग या क्षेत्र होता है। भारत जैसे विशाल देश में जहाँ भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं, वहाँ अनेकता में एकता या सामंजस्यता बिठाने में किस तरह की कठिनाइयाँ आती है ? यह प्रश्न बेहद महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आगे बढ़ने से पूर्व यहाँ किसी राष्ट्र या राज्य तथा भाषा से संबंधित विद्वानों के मत को जानना समीचीन होगा।

किसी भी राज्य (या देश) के विकास के लिए भाषा का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है और राज्य के विकास के साथ ही राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया जुड़ी होती है। भाषा के महत्त्व पर विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। कर्मेंदु शिशिर लिखते हैं, "भाषा ही वह तंतु है , जिसके सहारे देश की समझ-दिल और दिमाग में उतरती है। उसी सच्चे देश-राग से किसी देश की जनता के आपसी रिश्ते अटूट होते हैं।"[13] रणजीत साहा के अनुसार, "भाषा ही मनुष्य-मनुष्य के बीच और मानव समुदाय के बीच संवाद कायम करती है और जहाँ परस्पर संबंध बढ़ाती है वहाँ गलत या दोषपूर्ण प्रयोजन अथवा किसी रचनात्मक उपक्रम के चलते कलह अथवा सुलह का कारण भी बनती है।"[14] वे आगे लिखते हैं, "भाषा व्यक्ति की संवेदना के दायरे से निकलकर लोगों के साथ संवाद का माध्यम बन जाती है। लेकिन निजी स्तर पर भाषा ही व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करती है और विचारवान बनाती है। वह हमें भावसमृद्ध करती है और संवेदनशील बनाती है।"[15] लेख 'अज्ञेय का भाषा चिंतन' में कृष्णदत्त पालीवाल कहते हैं, "अज्ञेय मानते रहे हैं की भाषा मनुष्य की सबसे मूल्यवान सृष्टि है। जीवन की सच्चाईयों को पहचानने, 'नाम देने' से अपनाने का वही एक साधन मानव के पास है और वही हमें पशु से अलग करता है। भाषा में स्मृति परंपरा है, परंपरा में इतिहास- धर्म संस्कृति है - संस्कृति में

गतिशील आधुनिकता की सृजनात्मक अग्नि है।"[16] इसी लेख में वे एक स्थान पर कहते हैं कि अज्ञेय भाषा पर सोचने के लिए यह संकल्प या विचार लेकर आगे बढ़े कि "भाषा राष्ट्र की देन ही होती है। देश में अगर एक राष्ट्र समाज नहीं है तो उसकी एक भाषा भी नहीं होगी। जितनी छोटी या बड़ी परिधि में राष्ट्रत्व का बोध होगा उतनी ही परिधि भाषा की भी होगी, राष्ट्रत्व के बोध का जितना विस्तार होगा उतना ही भाषा का भी।"[17] यहाँ हमने भाषा संबंधी विद्वानों के मत को जाना जिसमें भाषा के कई सकारात्मक पक्ष हमारे सामने आए। भारत जैसे देश में भाषा संबंधी समस्या के कई पहलू हैं, जैसे कि किसी खास भाषा का यदि बर्चस्व बढ़ाता है तो उससे जुड़े वर्ग को ज्यादा लाभ होता है, ठीक इसके विपरीत उस खास भाषा को न जानने या कम जानने के कारण अन्य वर्ग को हानि होती है। फिर भारत में संपर्क भाषा की भी चर्चा होती है कि ऐसी कौन सी भाषा है जिसे संपर्क भाषा माना जाए। जिसमें हिंदी का नाम आता है लेकिन उसका विरोध दक्षिण में होता है क्योंकि उन्हें अपने भाषा पर खतरा मंडराता दीख पड़ता है। ठीक ऐसे ही अंग्रेजी के वर्चस्व को देखते हुए भी कई तर्क दिए जाते हैं कि इससे हमारा मानसिक विकास की गति अवरुद्ध होती है। शिक्षा के संबंध में भी मातृभाषा में की सिफारिश की जाती है कि कम से कम प्राथमिक शिक्षा तो मातृभाषा में ही होनी चाहिए। दूसरी तरफ व्यावहारिक तौर पर देखा जाए तो भारत के विभिन्न भाषाओं में वैश्विक स्तर पर ज्ञानाभाव दिखता है। अनुवाद की भी कमी दिखती है। अतः आइए ऐसी ही भाषा संबंधी कई समस्याओं और उसके कारणों पर प्रकाश डालने तथा विद्वानों के मंतव्यों को भी जानने की कोशिश करते हैं।

भारत में भाषा समस्या एक विकट समस्या रही है तथा इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण राजनीति भी है। भाषा को आधार बनाकर कभी क्षेत्रवाद कर नए राज्य की मांग की जाती है तो कभी किसी की भाषा को नीचा दिखाया जाता है और हीनता बोध उत्पन्न कर उनको उनके अधिकारों से वंचित किया जाता है। कभी अंग्रेजी भाषा के द्वारा ही जन कल्याण की बात की जाती है तो कभी उर्दू को सिर्फ मुसलमानों की भाषा बता कर फूट डालो और राज करो की नीति अपनायी जाती है। आज़ादी मिलने से पूर्व से ही भाषा समस्या भारत में रही है और इसके हल को लेकर विभिन्न विद्वानों ने प्रयास भी किये हैं। इसे विस्तार से जानने की कोशिश करते हैं। गंगा प्रसाद विमल लिखते हैं, "भारत एक भिन्न अर्थ में बहुभाषीय है कि वहाँ के सामान्य नागरिक भी एक से अधिक मातृभाषाओं के प्रयोगकर्ता

हैं। आपकी मातृभाषा आधुनिक समय में संविधान स्वीकृत सूची में से किसी एक को स्वीकार करने के कारण उर्दू हो सकती है और होगी भी तथापि न कोई कानून न कोई धार्मिक फतवा आपको हिंदी को भी अपनी मातृभाषा का प्रयोगकर्ता होने से रोक नहीं सकता। वह एक तरह का नैसर्गिक, उदार या कहीं स्वतंत्रता के बोझ से अनुप्रेरित अधिकार है जिसे आपसे कोई भी छीन नहीं सकता। आप सरायिकी को अपनी मातृभाषा स्वीकार करने पर पंजाबी, सिन्धी, डोगरी और पहाड़ी के मातृभाषत्व से खारिज नहीं हो सकते। अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, रूहेली, जौनपुरी लोकभाषाओं के दावेदार होने के कारण आपको हिंदी क्षेत्र से बाहर नहीं किया जा सकता। ठीक यही स्थिति दक्षिण दक्षिणात्य प्रदेशों की है जहाँ बहुभाषाई प्रकृति भिन्न प्रकार से आपके साथ जुड़ी हुई है।"[18] भाषा समस्या पर प्रमोद कुमार तिवारी जी लिखते हैं, "भारत अपने भाषा विवादों के लिए चर्चित रहा है। प्राचीनतम एवं विविधता पूर्ण संस्कृति के कारण यह देश भाषा के मामले में पूरी दुनिया में विशेष स्थान रखता है। यह किसी भी देश के लिए गर्व एवं समृद्धि का सबब हो सकता है परंतु भारत में यह एक समस्या के रूप में देखा जाता है। यह समस्या दो स्तरों पर खास तौर से देखने को मिलती है। पहला, हिंदी एवं अन्य भारतीय (विशेषतः दक्षिण भारतीय) भाषाओं एवं अंग्रेज़ी के संबंध के रूप में तथा दूसरे, हिंदी एवं हिंदी की उपभाषाएँ बोलियों के संबंध के रूप में। इसके अलावा उत्तर पूर्व की भाषाओं, आदिवासी समुदाय की भाषाओं तथा कम जनसंख्या वाले जातियों की भाषाओं का मुद्दा भी है।"[19]

जहाँ भारत में लोग विभिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलते हैं, वहाँ अंग्रेजी जो विदेशी भाषा है, उसे कैसे यहाँ के लोगों पर थोपा गया तथा यह प्रगति की राह में एक बाधा के रूप में है, जिसे डॉ. अमरनाथ जी कुछ इस कदर लिखते हैं, "संवैधानिक साजिश : स्वाधीनता आंदोलन के दौरान आजादी की जो अवधारणा तमाम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के मन में थी वह पूरी नहीं हुई। सन् 1947 में सिर्फ सत्ता का हस्तांतरण हुआ था। प्रेमचंद के शब्दों में 'गद्दी पर जॉन की जगह गोविंद बैठ गए।' व्यवस्था में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ। अंग्रेजी सदा शोषकों की भाषा रही है, सत्ताधारी वर्ग की भाषा रही है।"[20] सत्ता कायम रखने के सम्बन्ध में भाषा की भूमिका को लेकर प्रमोद कुमार तिवारी जी लिखते हैं, "भाषा की सत्ता और उसकी राजनीति का खेल वास्तव में रोजी-रोटी और सुविधा पर अधिकार के खेल से जुड़ा हुआ है जिसमें कुछ वर्ग सिर्फ अपनी भाषा के बल पर

हमेशा लाभ उठाना चाहता है और उसी के दम पर विशिष्ट बना रहना चाहता है इसके लिए वह हर तरह के हथकंडे अपनाता है।"[21] इन्हीं हथकंडो को भारत के कुछ उच्चवर्ग के लोगों ने कैसे अपनाया है उसका खुलासा करते हुए डॉ. अमरनाथ लिखते हैं, "ब्यूरोक्रेसी की भूमिका : अपनी भाषा की प्रतिष्ठा में हमारे देश की ब्यूरोक्रेसी मुख्य बाधा है। ब्यूरोक्रेट हमारी व्यवस्था रूपी मशीन के कलपुर्जे हैं। विधायिका का काम तो कानून बनाना भर है, उन्हें लागू तो ब्यूरोक्रेसी ही करती है और इस ब्यूरोक्रेसी का एक बड़ा हिस्सा कभी नहीं चाहता कि हमारी भारतीय भाषाएँ शासन की भाषा बने आज लगभग 80% नौकरशाहों के घरों के बेटे-बेटियां ही नौकरशाह बनते हैं, क्योंकि अंग्रेजी पर इन्हीं का वर्चस्व है और प्रथम श्रेणी की उन नौकरियों तक पहुँचने का मार्ग अंग्रेजी से होकर जाता है। यही वह आधार है जिसके आकर्षण की मृगतृष्णा में फंसकर देश की बहुसंख्यक जनता अंग्रेजी के पक्ष में खड़ी हो जाती है।"[22]

अंग्रेजी से आम जन जिसकी मातृभाषा कुछ और है वह कैसे जूझ रही है, उस सम्बन्ध में डॉ. अमरनाथ लिखते हैं, "वस्तुतः आदमी चाहे जितनी भी भाषा सीख ले वह सोचता अपनी भाषा में है। इस देश के चंद नौकरशाहों, पूंजीपतियों और साम्राज्यवाद के दलालों ने अंग्रेजी को मातृभाषा की तरह सीख लिया है, अपने बच्चों के लिए सर्वसाधन संपन्न, अतिविशिष्ट अंग्रेजी माध्यम के स्कूल खोल लिए हैं। इसलिए अंग्रेजी के बने रहने में ही इनका हित सुरक्षित है जिसे किसी कीमत पर यह छोड़ना नहीं चाहते। हमें व्यापक तौर पर जनता के बीच यह सच्चाई पहुंचानी होगी।"[23] वे आगे लिखते हैं, " अंग्रेजी शिक्षा का पहला प्रभाव यह पड़ता है कि व्यक्ति अपनी जमीन से कट जाता है। आज हमारे देश के सर्वोत्तम कोटि के वैज्ञानिक और इंजीनियर संस्थानों से निकलते ही सीधे यूरोप उड़ जाना चाहते हैं, क्योंकि वहाँ उनको तड़क-भड़क की जिंदगी और ढेर सारे पैसे मिलते हैं। अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा उनकी सोच को ऐसे बदल देती है कि वह अपने देश और देशवासियों की सेवा करना हेय समझते हैं और अमेरिका की चाकरी में गौरव अनुभव करते हैं। प्रश्न यह भी है कि क्या इस देश की आम जनता के श्रम से संचित धन से चलने वाले हमारे विश्वविद्यालय अब सिर्फ विदेशों की सेवा के लिए ही इंजीनियर तकनीशियन या वैज्ञानिक पैदा करेंगे ?"[24] डॉ. हरदेव बाहरी इन अंग्रेजी चाहने वालों के षड्यंत्र को अपनी पुस्तक 'हिंदी भाषा' में ऐसे व्यक्त करते हैं, "इसमें कोई संदेह नहीं

कि राजकाज में हिंदी के व्यवहार को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ किया गया है और बहुत कुछ किया जा रहा है, परंतु यह सब कुछ कितने वर्षों में हुआ है ? जब सन् 1815 में जर्मनी स्वतंत्र हुआ था तो बिस्मार्क ने आदेश दिया था कि 1 वर्ष के भीतर सभी राजकर्मचारी अपना-अपना कार्य जर्मन भाषा में करने लगेंगे; जो नहीं करेंगे, उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाएगा। 1 वर्ष में ही जर्मन राजभाषा बन गई। 1917 में रूस की क्रांति हुई। तब पहला काम यही किया गया कि जर्मन का प्रयोग हटाकर रूसी भाषा को प्रतिष्ठित कर दिया गया। इज़राइल की हिब्रू भाषा दो हज़ार वर्ष से (संस्कृत की तरह) न बोलचाल की भाषा रह गई थी, न शिक्षा की, न शासन की। जब इज़राइल स्वतंत्र राष्ट्र बना तो यहूदियों ने अपने मृतप्राय भाषा को पुनर्जीवित किया और देखते ही देखते वह वहाँ की राजभाषा बन गई, राष्ट्रभाषा बन गई, शिक्षा-विज्ञान, प्रविधि-विधि-विधान सब का माध्यम बन कर प्रतिष्ठित हो गई। किंतु हिंदी कोई मृतभाषा नहीं थी स्वाधीनता से पहले कई देशी रियासतो में राजभाषा थी, भारत भर में शिक्षा का माध्यम थी और इसमें प्रचुर ललित एवं उपयोगी साहित्य था। फिर 15 वर्ष के लिए इसे क्यों टाल दिया गया? इसके पीछे कई तरह के षड़यंत्र थे। सबसे बड़ा और घातक षड़यंत्र अंग्रेजी के पक्षधरों और पोषकों का था।"[25] वे आगे लिखते हैं, "अंग्रेजी संसार की सबसे बड़ी भाषा नहीं है। नौ प्रतिशत कुल जन समूह की अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी नहीं कहला सकती। यह भाषा विश्वज्ञान की खिड़की उन्हीं के लिए है जिन्होंने एकमात्र अंग्रेजी सीखी है। रूसी, जर्मन, फ्रेंच, संस्कृत आदि अनेक खिड़कियां हैं जिनसे ज्ञान का प्रकाश आ सकता है। किसी स्वतंत्र राष्ट्र की राजभाषा कोई विदेशी भाषा नहीं है, भारत एकमात्र अपवाद है। जापान और रूस ही नहीं, सारे देश अपनी-अपनी भाषा के माध्यम से विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में आगे बढ़े हैं।"[26] कर्मेंदु शिशिर लिखते हैं, "दरअसल भाषा का सवाल, कभी भी सिर्फ भाषा का सवाल नहीं होता। वह अपनी बुनियाद में ही किसी राष्ट्र की उसकी जनता की अस्मिता का सवाल होता है। अगर ऐसा नहीं होता तो स्वयं ब्रिटेन में ही दूसरी भाषाएँ अंग्रेजी के विरुद्ध क्यों होती ? इंग्लैंड से थोड़ी दूरी पर बसे हुए मामूली देश भी अपनी भाषा की राष्ट्रीय गरिमा को कायम क्यों रखते ? जबकि उन देशों की भाषाएँ एक ही भाषा परिवार की है। सोच, संस्कार और संस्कृति की भी समानताएं हैं तथा लिपि तक का भेद नहीं है।"[27]

भाषा की समस्या पर **गाँधी जी** ने भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे अंग्रेजी के सख्त विरोधी थे। गाँधी जी ने कहा था, "अंग्रेजी के व्यामोह से पिंड छुड़ाना स्वराज्य का एक अनिवार्य अंग है।"[28] वे आगे कहते हैं, "मैं यदि तानाशाह होता (मेरा बस चलता) तो आज ही विदेशी भाषा में शिक्षा दिया जाना बंद कर देता, सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएँ अपनाने को मजबूर कर देता। जो आनाकानी करते उन्हें बर्खास्त कर देता।"[29]....." मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियां क्यों न हो मैं इस से इसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह बच्चा अपनी मां की छाती से। यही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है। अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है जिसकी वह हकदार नहीं है, तो मैं उस से सख्त नफरत करूंगा - वह कुछ लोगों के सीखने की वस्तु हो सकती है लाखों-करोड़ों की नहीं।"[30] गाँधी जी के भाषा चिंतन को रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भारत की भाषा समस्या' में बताया है। वे लिखते हैं, "गांधी जी जानते थे कि भारत ऐसा राष्ट्र है जिसमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं। वह ब्रिटेन या फ्रांस की तरह एक भाषा वाला राष्ट्र नहीं है इसलिए वह इस पक्ष में थे कि भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हो जिससे प्रदेशों का राजकाज वहाँ की भाषाओं में हो सके।"[31] वे आगे लिखते हैं, " गांधी जी के लिए भाषा समस्या कोई शुद्ध भाषा विज्ञान की समस्या नहीं थी। उन्होंने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में ही उस पर विचार किया था कि अंग्रेजों ने भारतीय जनता को गुलाम बनाने के साथ उसकी भाषाओं का दमन किया, उसपर अंग्रेजी लादी। अंग्रेजों का चलन राजनीतिक-सांस्कृतिक पराधीनता का अंग था; उसे संपर्क भाषा के पद से हटाना राजनीतिक-सांस्कृतिक स्वाधीनता के लिए आवश्यक था। अंग्रेजी की जगह भारतीय भाषाओं का व्यवहार राष्ट्रीय आत्म सम्मान की रक्षा का प्रश्न था।"[32]

जब आज़ादी मिली तब संविधान निर्माताओं से लेकर विभिन्न विद्वानों ने हिंदी भाषा को ही संपर्क भाषा तथा राजभाषा बनाने की सिफारिश की थी। डॉ. बद्रीनारायण तिवारी ने लिखा है, "भारत को स्वाधीनता मिलने के बाद जब संविधान का निर्माण हुआ, उसमें भी देशहित में दूरदर्शी और अहिंदीभाषी नेताओं यथा संविधान निर्मात्री समिति में मराठी भाषा विद्वान डॉ. भीमराव अंबेडकर आदि ने भी हिंदी भाषा को ही राजभाषा का पद प्रदान किया था। संविधान निर्मात्री समिति में तमिल भाषी विद्वान श्री गोपाल स्वामी आयंगार ने भारत की राजभाषा हिंदी को बनाने का प्रस्ताव रखा। यह

प्रस्ताव सर्वसम्मति से देश की एकता हेतु स्वीकार हुआ था। इसका मुख्य कारण था देश की अस्मिता को भाषा के माध्यम से ही एक सूत्र में रखा जा सकता है।"[33]

26 जून, 1965 से राजभाषा अधिनियम,1963 के तहत द्विभाषिक स्थिति प्रारंभ हुई, जिसमें संघ के सभी सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों ही भाषाएँ प्रयुक्त की जा सकती थीं। सविधान के अनुसार 15 वर्ष के बाद अर्थात् 1965 ई. से सारा काम-काज हिंदी में शुरू होना था, परंतु सरकार की ढुल-मुल नीति के कारण यह संभव नहीं हो सका। साथ ही अहिंदी भाषी क्षेत्रों में विशेषतः बंगाल और तमिलनाडु में हिंदी का घोर विरोध हुआ। सन् 1968 में राजभाषा हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति को सुनिश्चित करने के लिए त्रिभाषा सूत्र को प्रस्तावित किया गया। इसका उद्देश्य हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी व अंग्रेजी के अतिरिक्त दक्षिण भारतीय भाषाओं में से किसी एक को तथा अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषा व अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी को पढ़ने की व्यवस्था की जाए, ऐसा प्रस्तावित किया गया। परंतु त्रिभाषा सूत्र का प्रयोग सफल नहीं हुआ। न तो हिंदी क्षेत्र के लोगों ने किसी दक्षिण भारतीय भाषा का अध्ययन किया और न ही गैर हिंदी क्षेत्र के लोगों ने हिंदी का उस मात्रा में जैसी अपेक्षा थी।

उपर्युक्त व्याख्या के आधार यह कहा जा सकता है कि यहाँ राष्ट्र (संघ), राज्य और भाषा के संवैधानिक संबंधों के साथ-साथ उनसे जुड़ी समस्याओं को समझने की कोशिश की गई। जिसमें विभिन्न विद्वानों के विचारों को व्यक्त किया गया। मुख्यतः राजनीतिक कारणों से भाषा समस्या आज भी एक बड़ी समस्या बनी हुई है, जो किसी न किसी रूप में एक वर्ग निर्माण कर जनता को बाँटने का काम करती है। चाहे वह हिंदी-अंग्रेजी विवाद हो, हिंदी-उर्दू विवाद जिसमें साम्प्रदायिकता की बू हो या फिर विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं की आपसी लड़ाई, मुख्यतः दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय भाषाओं में, या क्षेत्रवाद में भाषा का आधार, ये सभी बातें किसी राष्ट्र के निर्माण में समस्या उत्पन्न करती हैं तथा देश की उन्नति में बाधक होती हैं। कुल मिलाकर अंत में यही कहा जा सकता है कि भाषा न सिर्फ अभिव्यक्ति का माध्यम होती है बल्कि इसका सम्बन्ध मानसिक विकास पर भी निर्भर करता है। आज लगभग हर भारतवासी भाषा समस्या से जूझ रहा है। विज्ञान से लेकर गणित तक में अन्य भाषा से टकराहट तथा दूसरी भाषा सीखने का दबाव होता है। यहाँ दूसरी भाषा से तात्पर्य अंग्रेजी से है,

क्योंकि अंग्रेजी में ही आज ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई प्रमुखता से उपलब्ध है या अन्य भाषा में यह उस रूप में उपलब्ध नहीं है। यदि किसी अच्छे पद पर कार्यरत होना हो तो इसमें भी अंग्रेजी अनिवार्य हो जाती है। जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा इस दोहरी भाषा समस्या से जूझता है, फलस्वरूप उसकी ऊर्जा एक ही समय में दो जगह लगती है (सोचने में), जिसका परिणाम उस रूप में नहीं मिल पाता जिस रूप में मिलना चाहिए। यही कारण है कि भारत आज विज्ञान के क्षेत्र में वह प्रगति नहीं कर पाया है जितनी की उसे अब तक कर लेनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर चीन, जर्मनी आदि। जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस बड़ी जनसंख्या का उपयोग यह सोच कर किया जाए कि हमारे पास इतनी संख्या में दिमाग है, जिसे विभिन्न क्षेत्रों में प्रवृत किया जा सकता है, जिसमें भाषा की भूमिका सर्वोपरि है। यह कार्य किया जा सकता है, परंतु राज करने की नीति जो हमारे नेताओं ने अपनाई है वह शायद इस भाषा समस्या को बनाए रखना चाहती है। आशा है कि भारत निकट भविष्य में अपनी भाषा समस्या को सुलझा सके और जिस तरह तकनीक और विज्ञान का विकास हो रहा है, उससे यह संभव भी प्रतीत होता है !

सन्दर्भ सूची :-

[1] अम्बेडकर, डॉ. बी. आर.(अध्यक्ष संविधान सभा), 'भारतीय संविधान', india.gov.in, पृष्ठ-1.
[2] वही, पृष्ठ- 25.
[3] वही
[4] वही, पृष्ठ- 253.
[5] वही
[6] वही
[7] वही
[8] वही, पृष्ठ- 255.
[9] वही
[10] वही
[11] वही, पृष्ठ- 59.
[12] वही, पृष्ठ- 103-104.
[13] शिशिर, कर्मेंदु, 'सवाल सिर्फ भाषा का नहीं'(लेख),सं. अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, मार्च 2011, पृष्ठ-9.
[14] साहा, रणजीत, 'यथास्थिति के विरुद्ध'(लेख), सं. फरहत परवीन और कैलाश दहिया 'आजकल' (पत्रिका), आजकल प्रकाशन विभाग, लोदी रोड नई दिल्ली, सितम्बर 2013, पृष्ठ- 28.
[15] वही, पृष्ठ- 29, 43.
[16] पालीवाल, कृष्णदत्त, 'अज्ञेय का भाषा चिन्तन' (लेख) सं. फरहत परवीन और कैलाश दहिया 'आजकल' (पत्रिका), आजकल प्रकाशन विभाग, लोदी रोड नई दिल्ली, सितम्बर 2013, पृष्ठ- 20.

[17] वही

[18] विमल, गंगा प्रसाद, 'भारतीय भाषाएँ, हिंदी और भारतीयता' (लेख), स.फरहत परवीन और कैलाश दहिया 'आजकल' (पत्रिका), आजकल प्रकाशन विभाग, लोदी रोड नई दिल्ली, सितम्बर 2013, पृष्ठ- 36.

[19] तिवारी, प्रमोद कुमार, 'सम्पादकीय के बहाने' (लेख), सं.अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, जनवरी-फरवरी 2011, पृष्ठ-7.

[20] डॉ. अमरनाथ, 'हमारी भाषा नीति : कुछ अनसुलझे प्रश्न' (लेख), सं.अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, जनवरी-फरवरी 2011, पृष्ठ-83,84.

[21] तिवारी, प्रमोद कुमार, 'सम्पादकीय के बहाने' (लेख), सं.अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, जनवरी-फरवरी 2011, पृष्ठ-6.

[22] डॉ. अमरनाथ, 'हमारी भाषा नीति : कुछ अनसुलझे प्रश्न' (लेख), सं.अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, जनवरी-फरवरी 2011, पृष्ठ-84

[23] वही

[24] वही, पृष्ठ- 84-85.

[25] बाहरी, हरदेव, 'हिंदी भाषा', अभिव्यक्ति प्रकाशन, गोविन्दपुर कॉलोनी , इलाहाबाद, संस्करण-2006, पृष्ठ-146

[26] वही, पृष्ठ- 147.

[27] शिशिर, कर्मेंदु, 'सवाल सिर्फ भाषा का नहीं'(लेख), सं. अनंत कुमार सिंह, अतिथि स. प्रमोद कुमार तिवारी, 'जनपथ' (पत्रिका), प्रोग्रेसिव प्रिंट्स, शाहदरा, नई दिल्ली, मार्च 2011, पृष्ठ-9.

[28] बाहरी, डॉ. हरदेव, 'हिंदी भाषा', अभिव्यक्ति प्रकाशन, गोविन्दपुर कॉलोनी , इलाहाबाद, संस्करण-2006, पृष्ठ-147.

[29] वही, पृष्ठ- 148.

[30] वही

[31] शर्मा, रामविलास, 'भारत की भाषा समस्या', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संशोधित एवं परिवर्धित दूसरा संस्करण :1978, आवृति-2011, पृष्ठ- 334.

[32] वही, पृष्ठ- 317.

[33] तिवारी, बद्रीनारायण, 'राष्ट्रभाषा हिंदी : दुराव और यथार्थ' (लेख), सं.डॉ. बाबू लाल शर्मा, 'वैचारिकी' (पत्रिका),प्रकाशक- भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान, कोलकाता, सितम्बर-अक्टूबर 2012, पृष्ठ-80.

पता- फ़्लैट न. 89/09, 'च' टाइप, सेक्टर- 20
गांधीनगर, पिन- 382020
ईमेल- sumitk2004@gmail.com
मो. 8866508887, 9718817368